Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2024 5(1), 1689–1693

ELEMENTS OF DEVOTION INHERENT IN SHRIMAD BHAGWAT MAHAPURAN

श्रीमद्भागवत महापुराण में अन्तर्निहित भक्ति तत्व

Rinku Kumar [1]

[1] Researcher, Department of Yoga Studies, Himachal Pradesh University, Summerhill, Shimla-5

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.4516

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The word 'Bhakti' is derived from the root 'Bhaj-Sevayam' by the combination of the suffix 'Kti' (love). As a general rule, due to the combination of root and suffix, the suffix predominates in the meaning of the word nimitta, but here its meaning is - service with love. Service is a physical activity. The feeling of love is inherent in true service. Service without love is not acceptable because it is full of suffering. The perfection of love lies in service. According to Naradiya 'Pancharatra', "Bhakti is worshiping God with exclusive mind by completely freeing all the senses from the bondage of Maya. In the kingdom of devotion, both the enjoyer and the object of enjoyment are specialized in the senses of mind to enjoy the pleasure of mutual companionship.

Hindi: भक्ति‘ शब्द भज-सेवायाम् धातु में ‘क्ति’ (प्रेम) प्रत्यय के योग से बना है। सामान्य नियमानुसार धातु और प्रत्यय के योग से निमित्त शब्द के अर्थ में प्रत्ययार्थ ही प्रधान रहता है परन्तु यहाँ उसका अर्थ है- सप्रेम सेवा। सेवा शारीरिक क्रिया है। सच्ची सेवा में प्रेम का भाव निहित रहता है। प्रेम भावहीन सेवा कार्य क्लेश होने के कारण स्पृहणीय नहीं रहता। प्रेम की पूर्णता सेवाभाव में ही है। नारदीय ‘पंचरात्र’ के अनुसार ‘‘सम्पूर्ण इन्द्रियों को माया के बन्धन से सर्वथा मुक्त करके अनन्य मनसा भगवदाराधना ही भक्ति है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य दोनों ही पारस्परिक सहचर्यजन्य आनन्द का उपयोग करने के लिए चिन्मय देहेन्द्रिय-विशिष्ट होते है।‘‘

1. प्रस्तावना

भक्ति‘ शब्द भज-सेवायाम् धातु में ‘क्ति’ (प्रेम) प्रत्यय के योग से बना है। सामान्य नियमानुसार धातु और प्रत्यय के योग से निमित्त शब्द के अर्थ में प्रत्ययार्थ ही प्रधान रहता है परन्तु यहाँ उसका अर्थ है- सप्रेम सेवा। सेवा शारीरिक क्रिया है। सच्ची सेवा में प्रेम का भाव निहित रहता है। प्रेम भावहीन सेवा कार्य क्लेश होने के कारण स्पृहणीय नहीं रहता। प्रेम की पूर्णता सेवाभाव में ही है। नारदीय ‘पंचरात्र’ के अनुसार ‘‘सम्पूर्ण इन्द्रियों को माया के बन्धन से सर्वथा मुक्त करके अनन्य मनसा भगवदाराधना ही भक्ति है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य दोनों ही पारस्परिक सहचर्यजन्य आनन्द का उपयोग करने के लिए चिन्मय देहेन्द्रिय-विशिष्ट होते है।‘‘

शांडिल भक्ति सूत्र में ईश्वर के प्रति परानुरक्ति को ही ‘भक्ति‘ कहा गया है। अनुरक्ति और अनुराग पर्यायवाची शब्द है। अतः अनन्य अनुराग ही भक्ति है। यह राग आनंद से परिपूर्ण है। श्री रुपगोस्वामी ने ‘‘भक्तिरसामृतसिन्धु‘‘ में भक्ति ‘‘नारदीय भक्ति सूत्र‘‘ में प्रेम रूपा ‘भक्ति‘ का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है। भक्ति ईश्वर के प्रति परमप्रेम रुपा है। अर्थात् भगवान में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। वह भक्ति अमृत स्वरूपा है तथा उसे पाकर मानव सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है, इसी उपलब्धि होने पर मानव न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है न विषयादि के प्रति उसे उत्साह ही होता है। इस भक्ति को जानकर मानव उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, शान्त हो जाता है और आत्माराम बन जाता है।

वस्तुतः भक्ति की महिमा अपूर्व है। यद्यपि भक्तिरत भक्त किसी वस्तु की कामना नहीं करते तथापि मुक्ति आदि सिद्धियाँ तथा विभिन्न मुक्तियाँ भक्ति का दास्य स्वीकार कर भक्तों का दास्य स्वीकार करने के लिए आतुर रहती है। परन्तु भक्त इन क्षुद्र वस्तुओं पर दृष्टिपात तक नहीं करता, क्योंकि वह जानता है- हर्ष, शोक, द्वेष, कामना आदि से शुभाशुभ का त्यागी तथा भक्ति ही सतत प्रव्रजन करने वाला भक्त ही तो भगवान को प्रिय होता है।

भगवत् प्रेम प्रगट होते ही मनुष्य को उन्मत्त बना देता है। अतः प्रेमी भक्त सदैव प्रेम के नश में चूर होकर प्रभु के गुणगान गाने सुनने तथा उसी के चिन्तन में निमग्न रहता है। उसे अन्य बातें अच्छी नहीं लगती। वह पूर्णतः शान्त होकर आत्माराम बन जाता है। और इस प्रकार अपने प्रिय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कि मृगतृष्णा उसे भ्रमित ही नहीं कर पाती।''

प्रेमा भक्ति में 'अनन्यता सर्वोपरि है। अनन्यता क्या है? इस सम्बन्ध में देवर्षि नारद का कथन है कि अपने प्रिय (भगवान) को छोड़कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम ही अनन्यता है। प्रेमरुपा भक्ति को सर्वाधिक समादृत किया गया है। अतएव उसके लक्षणों का परिज्ञान भी आवश्यक है। भगवान् पराशर व्यास भगवान् की पूजा में अनुराग को ही भक्ति मानते है। विष्णु रहस्य में भी इसी कथन की पुष्टि है। श्री गर्गाचार्य ने भगवद् कथादि में अनुराग को ही भक्ति माना है। महर्षि शाण्डिल्य के मतानुसार आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग ही भक्ति है। श्री शङ्करचार्य भी इसी मत के पोषक है।

देवर्षि नारद के अनुसार अपने सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना और भगवान् का विस्मरण होने पर परमव्याकुल होना ही भक्ति है।

नारदोक्त इन्हीं लक्षणों को भक्ति योगी में घटित कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे सर्वोत्तम बतलाया है। वास्तव में ब्रज गोपियों की भक्ति ही भक्ति का सर्वोत्तम रुप है। उसमें अनन्यता, वियोग की असहनीयता, आकुलता और प्रिय विरह-कातरता तथा विरह की समस्त दशाओं का जो उन्मेष उपलब्ध होता है। अब अन्यत्र नहीं। महात्म्य ज्ञान बिना स्त्रियों के द्वारा किसी पुरुष के प्रति किया जाने वाला प्रेम जारों का सा प्रेम होता है। परन्तु सर्वार्पण की भावना स्वार्थहीनता केवल भगवत् प्रेम में ही होती है। और वह गोपियों के पूरे जीवन पर छाई हुई है। इसके अतिरिक्त जार प्रेम में प्रिय के सुख में सुखी होना भी सम्भव नहीं। परन्तु सच्चे प्रेमी स्वयं दुःख सहकर भी प्रिय के सुख में सुख का ही अनुभव करता है।

श्रीमद्भागवत के अध्ययन से सुस्पष्ट हो जाता है। कि यह ग्रन्थ-रत्न वस्तुतः ही भक्तिमार्ग का उन्नायक प्रचारक और इतिहास वृत्तात्म सामग्री का कोष रुप है। अष्टादश पुराण और महाभारतोत्तर निर्मित (रचित) होने के कारण इसमें वैदिककाल से महाभारतोत्तरकाल तक के भक्ति सिद्धान्तो। सूत्रों एवं साधनों का आकलन हुआ है। युगीन प्रवृत्ति और आवश्यकता के अनुसार धर्म और भक्ति की व्याख्या इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है।

श्रीमद्भागवत के माहात्म्य के परिचायक प्रथम पद्मपुराणोक्त पांच अध्यायों में भक्ति के साकार रुप का ही ख्यापन हुआ है। जिससे विदित होता है। कि श्रीमद्भागवत का उद्देश्य भागवतकार द्वारा 'भक्ति' की सुप्रतिष्ठा ही है। और यह ग्रन्थ उसका माध्यम है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति को परम कल्याणकर, पावनकत्र्ता श्रीकृष्ण को प्राप्त कराने वाला तथा पापों का शमयिता एवं मनःशुद्धिकारक अमोघ उपाय के रुप में स्वीकार किया गया है। तथा इसकी प्राप्ति बहुत कुछ गुरु कृपा कर सम्भव मानी है।

यहीं नारदीय द्वारा कलियुग दोष समूह के प्राबल्य से क्लान्त जरा, जीर्ण, खिन्नमना भक्ति से भट का वर्णन हुआ है। भक्ति के साथ ही जरा-जर्जर-ज्ञान-वैराग्य भक्ति के साधनों का भक्ति के पुत्रों के रुप में उल्लेख हुआ है।

भक्ति ने नारद भेट प्रसङ्ग में अपना परिचय इस प्रकार दिया है- ''मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई, किन्तु गुजरात में मुझे बुढ़ापे न आ घेरा। चिरकाल तक यह अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ निस्तेज हो गयी। अब वृन्दावन में आने के पश्चात् पुनः परमसुन्दरी नवयुवती हो गई हूँ।

भक्ति के इस कथन से कतिपय विद्वान् भक्ति आन्दोलन के श्रीगणेश का सम्बन्ध द्रविड प्रदेश (आलवाल भक्त समुदाय) से जोड़ते है। और उसके द्वारा भक्ति के इतिहास को ही नहीं अपितु भागवत को भी नया रुप देने का प्रयास करते है। जो समीचीन नहीं। यह भी सम्भव है। कि इस श्लोक को प्रतीकात्मक रुप में कहा गया हो। यद्यपि हम वेदों में भक्ति के रुप का प्रतिपादन कर भक्ति को अतीव प्राचीन सिद्ध कर चुके है। तथापि यह बता देना आवश्यक समझते है। कि जिस श्लोक को माध्यम बनाकर 'भक्ति' धारा को आधुनिक सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। वह श्लोक अभिधार्थ से युक्त न होकर लक्ष्यार्थ द्वारा नये भावों का ही परिचायक है।

वास्तव में इस श्लोक द्वारा भक्ति का आत्यन्तिक तथा गम्भीर चिन्तनयुक्त स्वरुप इस रुप में प्रस्तुत किया गया है। भक्ति द्रविड़ द्रविण अर्थात् धन सम्पन्न राजर्षियों के यहाँ उत्पन्न हुई। श्रीमद्भागवत में वर्णित सम्पूर्ण राजर्षियों के चरित्र इस कथन के प्रमाण में ग्रहण किये जा सकते है। जिनसे विदित होता है। कि सभी राजर्षि जीवनभर अपने आदर्श जीवन द्वारा जन-जीवन को अनुप्राणित करते रहे। तथा अन्तिम समय में सभी ने वैराग्य और ज्ञान (भक्ति-पुत्रों) का आश्रय ले भगवद् भक्ति में अनुरक्त हो प्राण त्याग किया। राजर्षियों की तपःपत जीवन में सांसारिक असारतादिक विषयों के चिन्तन के परिणामस्वरुप शाश्वत सत्ता के प्रति अनुरक्ति का 'भक्ति' रुप पुष्प प्रस्फुटित हुआ और वह (उसकी मधुर गन्ध), कर्ण-कानों (कर्ण-परम्परा) द्वारा अटन-प्रव्रजन (घूमता) करता हुआ धीरे-धीरे वृद्धिगत हुआ। अर्थात् कर्ण-परम्परा द्वारा उसकी कमनीयता का परिचय पाकर लोक उसकी सुगन्ध को हृदय में बसाने लगे और वह अधिकाधिक लोगों का प्रिय होता चला गया। वह सुगन्ध इतनी दिव्य थी कि वह केवल भारत में ही सम्मानित नहीं हुई, अपितु कतिपय महाराष्ट्र (बड़े-बड़े राष्ट्रों बाली, जावा, सुमात्रा, चीन आदि में भी वह सम्मानित हुई। अर्थात् आत्यन्तिक कल्याण का साधन समझकर भारतत्तर देशों में भी भक्ति मार्ग समादृत हुआ, परन्तु गुर्जर (आभीरप्रदेश हरियाणा, व्रज आदि प्रदेशों में) वह पर्णतः जीर्ण-पुराना अर्थात् परिपक्व हो गया, परन्तु काल धर्म से कई व्याघातों ने इसके जीवन में कुछ विकार (मत, मतान्तर रुप) उत्पन्न कर दिये। परिणामस्वरुप भक्ति के साथ-साथ ज्ञान और वैराग्य की स्थिति भी विषम हो गयी, परन्तु जब से वह वृन्दावन आई (श्रीवल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु द्वारा वृन्दावन को भक्ति का केन्द्र बनाया

गया)। पुनः वह नवयौवना हो गयी अर्थात् कीर्तनादि की नवोत्पादित-परम्परा ने ताल, सुर, गेय, पदादि से अलङ्कृत कर भक्ति मार्ग को परमोज्ज्वल रुप प्रदान किया।

नारद का यह कथन यह वृन्दावन धाम धन्य है। जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है। हमारे कथन का प्रमाण है। कलियुग में मोक्ष प्राप्ति का साधन, सारभूत वस्तु, भगवद्वश कारिणी शक्ति के रुप में भक्ति का ख्यापन उसकी महत्ता का परिचायक है।

भक्ति की साधना के लिए ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति आवश्यक है। और उसे प्राप्त करने का साधन भागवतकार ने श्रीमद्भागवत को प्रतिपादित किया है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है। कि भक्ति मार्ग के पथिक को सतत् श्रीमद्भागवत का सेवन करना चाहिए, क्योंकि श्रीकृष्ण ने इसे भक्तों के अवलम्बन रुप में मान्यता प्रदान की है।

श्रीमद्भागवत भक्ति मार्ग का प्रवर्तक प्रधान ग्रन्थ सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा चुका है। मूलतः स्वाभाविक ही इसका कोई अपराध है कोई चरित्र भक्ति-तत्व से विरहित नहीं है। यद्यपि श्रीमद्भागवत अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादक ग्रन है। तथापि उसके अनुसार भगवद् प्राप्ति का एकमात्र उपाय 'भक्ति' ही है। भक्ति के अतिरिक्त अन्य उपाय उपहासमात्रा है। ज्ञान और कर्म भक्ति के उदय से ही सार्थक होती है। भक्ति-दर्शन के चार प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं- वैष्णव सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय, रूप सम्प्रदाय और सनक सम्प्रदाय। इनके प्रधानाचार्य क्रमशः श्रीरामानुजाचार्य, मधवाचार्य, वल्लभाचार्य और निम्बार्काचार्य हैं। चैतन्य सम्प्रदाय माध्व मत की एक शाखा है। गीता में भक्ति सिद्धांत को गृह्यतम मानते हुए अनन्य भक्त को ही भगवान ने अपना प्रिय माना है। श्रीमद्भागवत में भी भक्ति को सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। यूँ तो सम्पूर्ण भागवत में भक्त चरित्रों के माध्यम से भक्ति तत्त्व का निदर्शन हुआ है। तथापि श्रीमद्भागवत के द्वितीय, तृतीय और एकादश स्कन्धों में 'भक्तितत्व' का विशद विवेचन हुआ है।

सर्वप्रथम भगवद् भक्ति के माहात्म्य का वर्णन करते हुए भक्ति को मानव का सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा परमात्म-तत्त्व को अनुभव कराने वाले साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ के प्रधान अङ्गों के रूप में श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन का उल्लेख किया गया है। भक्ति को षड् विकार की नाशिका, शान्तिदायिनी, ईश्वर साक्षात्कार कारयित्री तथा आत्मप्रसादिका रूप में स्वीकार कर उसकी महत्त प्रतिपादित की गयी है। भक्ति के अङ्गभूत कीर्तन को भी श्रीमद्भागवत में महत्त्व प्राप्त हुआ है।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में संसार चक्र में पड़े हुए मानव के लिए भक्ति प्राप्ति के साधन को अपनाना ही सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग के रूप में स्वीकार करते हुए। भगवद् भक्ति के प्राधान्य का निरुपण किया गया है। तथा भगवद् सेवा विरहित मानव अङ्गों और कार्यों को सर्वथा गर्हित बताया गया है।

तृतीय स्कन्ध में भक्ति योग का ख्यापन करते हुए भगवान् कपिल द्वारा 'भक्तियोग' पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त भक्तियोग को परमपुरुषार्थ मानते हुए भक्तों के सात्विक, राजस, तामस, निर्गुण, सगुण, निष्काम, सकाम, अनन्य, स्वार्थी आदि भेदों का ख्यापन करते हुए उनके लक्षण, उनके द्वारा ग्रहण और त्याग किये जाने वाले कार्य तथा भक्ति साधना की विधि पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विकारों का त्याग, समदर्शिता और शान्त हृदय में अनन्त दर्शन को विशेषतः प्रश्रय मिला है। इस स्कन्ध में आगे चलकर पुनः भक्तियोग की उत्दृष्टता का वर्णन करते हुए कहा गया है। कि 'भक्तियोग' तुरन्त ही संसार से वैराग्य और ब्रह्म साक्षात्कार रुप ज्ञान की प्राप्ति कराने वाला तथा साधना का परमफल है।

श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लद चरित्र के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन रुपा नवधा-भक्ति का उल्लेख हुआ है। श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में अम्बरीष चरित्र में भगवान् ने स्वयं को भगवद् भक्तों के आधीन बताते हुए भक्ति की महत्ता को प्रतिपादित किया है। दशम स्कन्ध में भी परोक्ष रुप में भक्ति की महिमा का गान किया गया है। दशम स्कन्ध में विभिन्न माध्यमों का आधार लेकर वत्सल, मधुर, शान्त, तथा दास्य भक्ति के पाँच रसों की सुमधुर धारायें प्रवाहित हुई है। ग्यारहवें स्कन्ध में 'भक्ति तत्त्व' का विशद विवेचन हुआ है। ग्यारहवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में भक्तिहीन पुरुषों की गति और भगवान् की पूजा विधि का वर्णन हुआ है। दसवें अध्याय में भक्त के दृपालुआ, निष्कामता, पावनता, धैर्यशालिता, निर्वैर, गम्भीरता आदि लक्षणों का वर्णन कर चैदहवें अध्याय में भक्ति योग का विशद वर्णन हुआ है।

भागवत के अनुसार भक्ति मार्ग अतीव सुलभ है। भगवद्-भक्तों के सत्संग के हृदय निर्मल होकर निष्काम भक्ति की प्राप्ति होती है। फिर रजोगुण और तमोगुण के विकार, काम और लोभ चित्त से हट जाते है और मन सत्त्व गुण में स्थिर हो जाता है। विषयों में आसक्ति बन्धन का कारण है। पर यदि सत्संग में हो तो मोक्ष को सुलभ बना देती है।

सत्संग से भगवान् में श्रद्धा, प्रीति और भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति से पूर्ण वराग्य और मुक्ति की उपलब्धि होती है।

शुद्ध सत्त्वत्मय भगवान् में इन्द्रियों की निष्काम वृत्ति को भक्ति कहते है। यह वासना को नष्ट कर देती है। भगवद्-भक्ति कालचक्र के प्रभाव को तथा भय को दूर करने में सर्वाधिक सक्षम है।''

फल और सङ्कल्प भेद से भक्ति-योग की अनेक शाखायें हैं। भेद भाव तथा अनिष्टेच्छा से की जाने वाली भक्ति तामस, यश, धन आदि की कामना से भेद बुद्धि के साथ जाने वाली भक्ति राजस तथा निष्काम एवं अनन्य भाव से सर्वस्व समर्पणपूर्वक की जाने वाली भक्ति सात्विक है। निर्गुण भक्ति एक ही प्रकार की है। भगवान् को सर्वान्तर्यामी, भक्त वत्सल आदि मानकर निष्काम भाव और भेद बुद्धि रहित हो, की जाने वाली भक्ति निर्गुण भक्ति है। निष्काम भक्त सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य तथा साष्टि आदि मुक्तियों को न चाहकर भगवद्-भक्ति और सेवा में ही मग्न रहता है। भक्ति के इस रूप को 'आत्यन्तिक भक्ति' कहते है। इसमें साधक गणत्रयातीत हो। शुद्धमना बन, ब्रह्म रूप हो जाता है। भगवान् के सर्वव्यापीरूप रूप की उपेक्षा कर प्रतिमा की उपासना अधिक प्रशस्त नहीं है। श्रेष्ठ भक्त सर्वस्व सम्पर्क ही है।

मूर्ति पूजक साधक को एकाग्र हो, हरि का मनन, पूजन, द्वादशाक्षर मंत्र का जाप करना आवश्यक है। इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप कल्याण की प्राप्ति तथा वासनाजन्य मल की निवृत्ति होकर शुद्ध अन्तःकरण की प्राप्ति होती है।

मनुष्य का कल्याण- वैराग्य और भगवद्-भक्ति दो ही कारणों से सम्भव है। दोनों की सिद्धि के साधन हैं- श्रद्धा, परोपकार, तत्त्व जानने की इच्छा, योग क्रियाओं का अभ्यास, भगवदाराधन, भगवन्नाम स्मरण, कीर्तन, सत्संग, अहिंसा, परमहंस, वृत्ति, आत्मचिन्तन, इन्द्रिय दमन, कामनाओं का त्याग, व्रत, नियम, सहिष्णुता आदि। ईश्वर की दृढ़ भक्ति से तत्त्व ज्ञान तथा विषयों से वैराग्य दोनों प्राप्त होते है। मन की वासनाओं को दूर कर सतत् भगवदाराधन से भगवान् सदैव हृदय में विराजमान रहते है। जहाँ आत्मशान्तिदायक हरि नहीं है। वहाँ योग, सांख्य का अभ्यास, वेदाध्ययन और संन्यास सब व्यर्थ है।

भक्तिमार्ग अतीव सहज, मंगलदायक और पापनाशक है। बिना भक्ति के आत्मज्ञान कदापि संभव नहीं। भक्ति-प्राप्ति का साधन है- भगवतलीला श्रवण, कीर्तन, भगवदाराधन, प्राणिमात्र में भगवद् दर्शन, भगवद् प्रीत्यर्थ, यज्ञ, जप, तप, दान आदि। ज्ञान कुल मोक्ष, कर्म का धर्म, योग का अणिमादि सिद्धि, दण्डनीति का शासन क्षमता तथा अनन्य भक्ति कुल चतुर्वर्ग की अनायास प्राप्ति है।

श्रीमद्भागवत में भागवत (भक्त) के लक्षण इस प्रकार बताये गये है। जो मनुष्य स्वयं में भगवद् भाव रखकर सब प्राणियों को अपने में और सबको अपनी आत्मा में देखता है। वही श्रेष्ठ भगवद्-भक्त है। जो ईश्वर से प्रेम और उसके जनों से द्वेषपूर्ण और उपेक्षा का भाव रखता है। वह माध्यम है। तथा अन्य वस्तुओं में हरि की भावना न रखने वाला साधारण है। जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति से जिसके मन में अहंभाव न हो वही भक्त भगवान् को प्रिय है।

श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप में कहा गया है। कि कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म, व्रत, तीर्थयात्रादि द्वारा जो प्राप्त होता है। वह भक्ति योग द्वारा अनायास प्राप्त हो जाता है तथा भक्ति के द्वारा चाण्डाल भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ हो जाता है। यह कहकर भक्ति के स्वाभाविक महत्त्व का ज्ञापन भागवत में हुआ है। भक्ति के लक्षणों का सुन्दर रुप कपिलजी ने प्रतिपादित किया है। और उसके अन्तर्गत निष्काम भक्ति को ही उन्होंने प्रशस्त माना जाता है। श्रीमद्भागवत में भगवान् रुद्र ने वासुदेव के शरणागत भक्त को अपना परमप्रिय, यम ने भक्ति-प्राप्ति को मानव का परमधर्म पाप क्षयकारक, मुक्तिदाता, साधन, प्रह्लद ने समस्त सद्गुणों की प्राप्ति का साधन, भगवान् ने समस्त पाप क्षयकारक, तथा नारदजी ने ज्ञान और कर्म को शोभित करने वाला साधन ही भक्ति को माना है। योगीश्वर कवि भक्ति तथा भक्ति के कीर्तनादि साधनों को मङ्गल नियम तथा देवी कुन्ती इसे मृत्यु प्रवाह को रोकने का उपाय मानती है।

वैष्णव ग्रन्थों के अनुसार शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य तथा मधुर इन पाँच भक्ति भावों का तो श्रीमद्भागवत में ख्यापन हुआ ही है। साथ ही इनके अवान्तर भेद, भक्ति रस के आलम्बन, उद्दीसपन विभाव, आठ (स्तम, स्वेद, रोमाञ्च आदि) सात्त्विक भाव, 33 सञ्चारी भावों का भी ख्यापन हुआ है। इन आलम्बनादि का अनुभवकत्र्ता, भक्ति का आश्रय है। भक्त का हृदय और वह इतना महान् है। कि अखिल विश्व को पवित्र कर देने की क्षमता उसमें होती है।

भक्ति मार्ग के श्रेष्ठ आचार्य महर्षि शाण्डिल्य द्वारा अनुमोदित भक्ति की सम्मान, बहुमान, प्रीति, विरह, इतर विचिकित्सा, महीमख्याति, तदर्थ प्राणस्थान, तदन्यता, सर्वतद्भाव, सतत अनन्य भाव से स्मरण आदि भाव भूमियो, दशाओं का ख्यापन भी भागवत में यथास्थान हुआ है।

संक्षेप में कहा जा सकता है। कि भक्ति का रुप, महत्त्व, भेद, साधन आदि सब पर श्रीमद्भागवत में अतीव विशद रुप में विवेचन हुआ है।

श्रीधरी टीका में कपिल-देवहति संवाद में भक्ति-मार्ग के अनेक भेदों का दिग्दर्शन कराते हुए श्रीधर स्वामी ने नवधा भक्ति के प्रत्येक भेद के 9-9 भेद गिना कर सगुण भक्ति को ही 81 प्रकार का सिद्ध किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

पाणिनिसूत्र
पुराणतत्वमीमांसा- श्री कृष्णमणि त्रिपाठी
मत्सयपुराण
ऋग्वेद
अमरकोष
वायुपुराण
पद्मपुराण
संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुरणांक
वात्स्यायन न्यायभाष्य
स्कन्धपुराण
नारद भक्ति सूत्र
श्रीमद्भागवत
विष्णुरहस्य

बोधसार
तदैव
निरुक्त